

## भारतीय चिन्तन की शाश्वत प्रासंगिकता

—श्री रमेशचन्द्र लाहोटी,  
पूर्व मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय, भारत

भारतीय चिंतन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि तब था जबकि चिंतन प्रारंभ हुआ था। समय बदलता गया, इतिहास ने कई करवटें ली, भारतीय दर्शन और भारतीय संस्कृति पर अनेक आक्रामक प्रहार हुए किंतु हमारा चिंतन आज भी जीवंत है, चिरजीवंत है। वह आज भी चुनौतियों से लड़ने की सामर्थ्य रखता है। इकबाल का मुक्तक है:—

यूनान—ओ—मिस्र—ओ—रोमां सब मिट गए जहां से; अब तक मगर है बाकी नामो—निशां हमारा।

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी; सदियों रहा है दुश्मन दौरे—जहां हमारा।

वह 'कुछ बात' क्या है? कौन से कारण हैं कि भारतीय चिंतन न तो टूटा न बिखरा, न ध्वस्त हुआ ? भारतीय चिंतन के श्रोत हैं — भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन। दोनों ही अतिउदार और विनम्र। वे साहचर्य और सहअस्तित्व में विश्वास रखते हैं। किसी से लड़ते नहीं हैं। अपने आपको किसी पर बलात थोपते नहीं हैं। वे किसी को विवश नहीं करते कि हमें स्वीकार करो। न किसी से परहेज करते हैं और न किसी को त्याज्य मानते हैं। किसी पर आक्रमण नहीं करते। न प्रहार करते हैं, न बल प्रयोग करते हैं। वे केवल अपनी गुणवत्ता और अपने गुणधर्म पर जीवित रहते हैं। जब भी कोई चिंतन बाहर से आया उसमें यदि कुछ श्रेष्ठ है, स्वीकार्य है तो भारतीय चिंतन ने उसे अपनाकर अपने में समाहित कर लिया। वह गुण का ग्राहक है। जहां आवश्यक हो भारतीय चिंतन तन कर खड़ा होता है, समझौता नहीं करता। जहां आवश्यक हो विनम्रतापूर्वक झुक जाता है।

एक वृद्ध साधक अपने शिष्यों के साथ नदी के किनारे चल रहा था। यकायक पांव फिसल गया। साधक नदी में गिर पड़ा और तेज धार में बहने लगा। पहाड़ी नदी थी। शिष्य किनारे—किनारे चलते हुए पीछे—पीछे भागे। कुछ आगे जाकर नदी एक झरने के रूप में गहरी घाटी में गिरने लगी। शिष्यों को लगा कि अब तो घाटी से गुरु जी का मृत शरीर ही प्राप्त होगा। शिष्य प्रयास पूर्वक घाटी में पहुंचे किंतु यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि नदी से गुरुजी सशरीर चलते हुए बाहर आ रहे हैं। शिष्यों ने कौतूहलपूर्वक पूछा—

“आप कैसे बच गए ? आपको कोई चोट नहीं आई?” वृद्ध साधक ने कहा— “मैं जानता था कि नदी की तेज धार से मैं संघर्ष नहीं कर सकूंगा। नदी के प्रबल वेग पर विजय पाकर मैं इसे अपने अनुकूल नहीं बना सकता था इसलिए मैंने स्वयं को नदी की धार के अनुकूल बना लिया। नदी के बहाव में स्वयं को छोड़ दिया। तेज बहती हुई धारा के साथ मैं बहता गया। उछला, घूमा, गिरा पर पानी के साथ-साथ। और, जैसे ही प्रबल वेग शांत हुआ मैं पानी से निकल आया।”

भारतीय चिंतन में लोच है। वह अपने आधारभूत लक्षणों का त्याग नहीं करता किंतु समय के साथ बदलने की और परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल लेने की अद्भुत क्षमता रखता है। सूंप के स्वभाव वाले साधु की तरह वह सार को ग्रहण करता है, थोथे को उड़ा देता है और इस प्रकार शनैः शनैः समृद्ध और सशक्त होता चला जाता है। इसलिए भारतीय चिंतन समयातीत है।

आज भारत ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व अनेक समस्याओं से जूझ रहा है। भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त है। केवल आर्थिक भ्रष्टाचार ही नहीं अनैतिक अचारण, परिणामतः अपराधों में अन्धा धुन्ध वृद्धि सर्वत्र दृष्टव्य है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से तीन वायरस (Virus) निरन्तर फैल रहे हैं — violence, vulgarity, vices दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले अनेक कार्यक्रम हमारे चिंतन और दर्शन से मेल नहीं खाते। यह प्रदूषण हमारी संस्कृति में अबाध रूप से फैल रहा है। विशेषकर कम उम्र युवाओं, जिन्हें बहुत परिपक्व नहीं कहा जा सकता है और जिनके मानस का अवमूल्यन इस सांस्कृतिक प्रदूषण के कारण सहज संभाव्य है उनके चिंतन को यह प्रभावित कर रहा है। ‘सेक्युलरिज्म’ का अर्थ सर्वधर्म समभाव के स्थान पर धर्मभाव के रूप में स्वीकृत हो चुका है। कारण हैं — भौतिकवाद और भोगवाद। यह वैश्वीकरण और उदारीकरण का युग है। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में प्रगति ने तेज गति पकड़ रखी है किंतु विकास की यह यात्रा निरे भौतिकवाद की ओर मुड़ चुकी है। आध्यात्मिक प्रगति को लगभग तिलांजली दे दी गई है। एक व्यंगकार के शब्दों में इस यात्रा का नारा है — ‘Welcome body, good bye soul; Build body, suppress the soul.’

हमारी युवा पीढ़ी निरंतर इस जीवन पद्धति को स्वीकार करने के लिये प्रेरित हो रही है कि वर्तमान को भोगो, भविष्य की चिंता छोड़ दो। तत्कालिक लाभ के लिए मानव निर्मित साधनों द्वारा प्रकृति प्रदत्त संपदा का क्रूर दोहन किया जा रहा है। मानव का 'मूल्य' बढ़ रहा है, मानव-मूल्यों का मूल्य घट रहा है। संयुक्त परिवार तो टूट ही चुके हैं, परिवार भी टूट रहे हैं। विवाह की संस्था (the Institution of Marriage) जो समाज में नैतिकता का आधार है, क्षीण हो रही है। एक पुस्तक प्रकाशित हुई है – फेन्टास्टिक वॉयेज (Fantastic Voyage)। वैज्ञानिक तथ्यों की नींव पर आधारित इस पुस्तक में लेखक द्वाय रे कुर्जवैल तथा टैरी ग्रॉसमैन, एम0 डी0 ने उस समाज का खाका खींचा है जिसके सदस्य हम शीघ्र ही होने जा रहे हैं। जो जीवन पद्धति हम जीएंगे या जीने के लिए विवश होंगे, उससे यह पुस्तक हमारा बेबाक साक्षात्कार कराती है। हमारा ही भविष्य, ऐसा भविष्य जिसका घटना अवश्यंभावी है। उस पुस्तक में परिवार की परिभाषा यह दी गई है—'like minded people living together'. समान सोच वाले व्यक्तियों का साथ-साथ रहना, यही परिवार होगा। आवश्यक नहीं कि वे पुरुष और स्त्री हों, वे माता-पिता, पुत्र-पुत्री हों। उनका आपस में कोई रिश्ता होना आवश्यक नहीं है केवल इतना पर्याप्त होगा कि उनकी सोच समान है। वे पुरुष पुरुष भी हो सकते हैं, स्त्री स्त्री भी हो सकते हैं। आयु के अन्तर का कोई महत्त्व नहीं। जब तक उनकी सोच समान है वे परिवार के सदस्य हैं। जिस दिन उनकी सोच में भिन्नता आ जाएगी वे परिवार के सदस्य नहीं रहेंगे। उन व्यक्तियों के साथ रहने में आयु के अन्तर की कोई प्रासंगिकता नहीं होगी और न ही संबंधों के स्थायित्व के लिए कोई स्थान। परिवार की हमारी स्थापित मान्यता ही ध्वस्त होने जा रही है। रिश्तों का आधार दिमाग होगा दिल नहीं। रिश्तों का बनना और बिगड़ना भावना (इमोशन) के आधार पर नहीं, तर्क (लॉजिक) के आधार पर होगा। स्वाभाविक है कि रिश्तों में निर्णायक भूमिका 'मूल्यों' की नहीं, 'कीमत' की होगी। संबंधों में स्थायित्व अब शायद न रहे।

क्या इन समस्याओं से जूझने के लिए भारतीय चिंतन प्रासंगिक है? क्या भारतीय चिंतन समकालीन परिस्थितियों में सार्थक होगा? क्या भविष्य के लिए उसकी उपादेयता है?

मैंने एक विद्वान से सुना है कि सिकंदर जब विश्व-विजय पर निकला तो वह अपने गुरु अरस्तु से आशीर्वाद लेने गया। उसने अरस्तु से पूछा कि मैं विश्व विजय करके लौटूंगा आपके लिए क्या उपहार लेकर आऊँ? अरस्तु ने कहा— सिकंदर, तुम अपनी यात्रा में भारत भी जाओगे, भारत की पांच वस्तुएं ऐसी हैं जिनकी विश्व में कोई तुलना नहीं है। ये हैं गंगा, गीता, गायत्री, गौ और गुरु। इनमें से एक भी यदि ला सको तो मेरे लिए लेते आना।

भारत का धर्म, संस्कृति और चिन्तन—इन सबका जन्म वेदों से हुआ है। यह मान्यता है कि जब मानवता की रचना नहीं हुई थी तब भी वेदों की रचना हो चुकी थी। वेदों में वही है जो ईश्वर ने स्वयं कहा है। यह धर्म आधारित मान्यता है, विश्वास है। जिन्हें धर्म में रुचि नहीं है वे भी मानते हैं कि वेदों में जो लिखा गया है वह ज्ञान में उत्कृष्टता की पराकाष्ठा है। वेद विज्ञान सम्मत हैं। हमारे पुराणों ने विशुद्ध ज्ञान और विज्ञान से अर्जित उपलब्धियों को आध्यात्म में परिवर्तित किया। अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थ रामायण में वेद—पुराण, श्रुति और स्मृति—ऐसे अनेक शास्त्रों का निचोड़ है।

हमारे दो ग्रन्थ सार्वभौम हैं, हर घर में पाये जाते हैं। वे हैं रामायण और गीता। एक विद्वान के अनुसार रामायण प्रयोग का ग्रन्थ है और गीता योग का ग्रन्थ है। रामायण में मानव मूल्यों और आदर्शों की श्रेष्ठतम् अनुकरणीय प्रस्तुति है। गीता का जन्म अर्जुन के विषाद से हुआ है। विषाद दुःख से परे कोई अनुभूति है। भारतीय चिन्तन सुख और दुःख से ऊपर उठकर आनंद की सर्जना करता है। कदाचित् विषाद आनंद का विपर्यय हो सकता है। गीता के द्वारा भगवान् कृष्ण ने भारतीय दर्शन को ज्ञान, कर्म और भक्ति(अर्थात् सात्त्विक प्रेम) में विभक्त कर तीनों में संतुलन बैठाया। तीनों ही मार्ग योग के मार्ग हैं; नैतिकता और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में मौलिक एवं आधारभूत हैं। संत बिनोबा भावे ने महाभारत और रामायण को 'राष्ट्रीय ग्रन्थ' कहा है। वे कहते हैं —“गीता का और मेरा संबंध तर्क से परे है। मेरा शरीर मां के दूध पर जितना पला है, उससे कहीं अधिक मेरे हृदय और बुद्धि गीता के दूध से पोषित हुए हैं।” वे कहते हैं कि रामायण एक मधुर नीति काव्य है और महाभारत एक व्यापक समाजशास्त्र।

रामायण और श्रीमद्भागवत(गीता जिसका अंग है), ये भारतीय चिंतन के दो किनारे हैं। रामायण का संदेश है कि जो राम ने किया वह करो। रामायण में राम बोले बहुत कम हैं। राम के रूप में उन्होंने स्वयं को श्रवणीय के स्थान पर अनुकरणीय रूप में प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण ने जो लीला की है उसे सांसारिक अर्थों में अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता। उनकी लीला एक गहन रहस्य है जिसे बहुत साधना के उपरांत ही समझा जा सकता है। किंतु कृष्ण के रूप में वे मुखर हुए हैं। उन्होंने जो कहा है वह आदर्श संदेश हैं और करणीय हैं। इन दो अवतारों में भी भारतीय चिंतन की श्रेष्ठ विधाएं लक्षित होती हैं। राम अवतार में लक्ष्मण ने राम का अनुज बनकर उनकी सेवा की। राम ने छोटे भाई का भी उपकार माना और कहा अगले अवतार में तुम बड़े भाई बनना और मैं छोटा रहूंगा ताकि छोटा बनकर मैं तुम्हारी सेवा कर सकूं और इस अवतार में जो उपकार तुमने मुझ पर किया है उसका प्रतिदान कर सकूं। कृष्ण अवतार में लक्ष्मण बलराम बने हैं। भारतीय चिंतन यह कहता है कि अपने से छोटा भी सेवा करे जोकि उसका कर्तव्य है तो उसका भी उपकार मानो और उस उपकार का भी प्रतिदान करो।

भारतीय चिंतन में पाप और पुण्य की सर्जना भी है और इन्हें परिभाषित किया गया है। धर्म से परे हटकर विशुद्ध समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परखा जाए तो भारतीय चिंतन में समाहित पाप और पुण्य की अवधारणा केवल एक आचार संहिता है, विधि और निषेध, (Do's and don't's.) 'यह करो और यह न करो' को सूचीबद्ध करती है। पाप और पुण्य की ये परिभाषाएं केवल वैचारिक बुद्धिवाद अथवा कपोल कल्पना या पाखंड नहीं हैं। पाप और पुण्य की ये परिभाषाएं भारतीय चिंतन में रचे-पगे व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंश बनकर उसकी अंतरात्मा में पैठ जाती हैं। सज़ा का प्रावधान होते हुए भी कानून का पालन कराने में कठिनाईयां आती हैं। कानून से भी अधिक प्रभावशाली कोई है तो वह है अंतरात्मा की आवाज़। अकेले में व्यक्ति कानून का उल्लंघन करने से नहीं डरता। जहां उसे कोई देख नहीं रहा होता है, वहां पालन करने के लिए और उल्लंघन न करने के लिए कोई विवश करता है तो वह है उसकी अंतरात्मा की आवाज़ और पाप-पुण्य की अवधारणा, कर्म का सिद्धान्त। जैसा करोगे, वैसा भरोगे। हमने पुर्नजन्म के सिद्धान्त को

स्वीकार किया है और यह व्यवस्था की है कि इस जन्म का कर्म और अकर्म अगले जीवन का रूप निर्धारित करेगा। यह प्रेरणा भी है, वर्जना भी।

पर्यावरण और प्रदूषण की समस्याएं हैं। करोड़ों रुपये उपाय और प्रचार-प्रसार पर व्यय करके भी इन समस्याओं का समाधान निकाले जाने में सफलता नहीं मिल रही है। हम विनाश की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। भारतीय चिंतन में प्रदूषण का निषेध और पर्यावरण की रक्षा को धर्म का अंग बनाकर अद्भुत व्यवस्था की गई। पृथ्वी, जल, वृक्ष, वायु, प्रकाश और अग्नि (ऊर्जा का श्रोत) सभी को देव तुल्य स्थान देकर उन्हें पूजनीय बना दिया गया। भारतीय चिंतन ने यह व्यवस्था दी कि 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा' ये पंच महाभूत हैं जिनसे शरीर की रचना होती है। यहीं से मनुष्य का शरीर बनता है और अंत में इन्हीं में विसर्जित होकर विलीन हो जाता है। हमने माना कि जहां से आना है और जहां जाकर मिल जाना है उन्हें शुद्ध और पवित्र रखो, उनका आदर करो, उनकी पूजा करो। उन्हें प्रदूषित कर अपवित्र न करो। इसमें हमारा हित है, पर-हित भी।

भारतीय मनीषा में जाति-पांति, छुआछूत आदि के लिए कोई स्थान है ही नहीं। दो-तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे। संत रैदास चर्मकार थे। वे जूते बनाते रहते थे और भजन करते रहते थे। उनके पिता ने उन्हें घर से इसलिए निकाल दिया कि वे साधू संतों के जूते बनाकर उनसे पैसे नहीं लेते थे जिसके कारण धंधे में घाटा होता था। वे ऐसे पहुंचे हुए वियोगी थे कि एक बार किसी ने उन्हें पारस पत्थर दिया जिसका प्रयोग वे करते तो उन्हें जीविकोपार्जन के लिए परिश्रम करने की आवश्यकता ही न रहती। किंतु संत रैदास ने पारस अपनी झोपड़ी की छत की घास में छुपा कर रख दिया। उसका उपयोग ही नहीं किया। मीराबाई ने उन्हीं रैदास को अपना गुरु बनाया। मीराबाई तो क्षत्राणी थी, उन्हें किसी ब्राह्मण गुरु का अभाव नहीं था। किंतु केवल गुणों से प्रभावित होकर उन्होंने एक तथाकथित निम्न जाति के रैदास को अपना गुरु चुना। भगवान राम क्षत्रिय थे। शबरी जाति की भीलनी थी। राम ने न केवल शबरी के छुए हुए बल्कि उसके चखे हुए अर्थात् झूठे बेर प्रेम से खाए। केवट, निषाद और इसी प्रकार के अनेक वनीय जाति के व्यक्ति जिन्हें हम आज आदिवासी कहते हैं उन्हें गले से लगाया, उनका आतिथ्य स्वीकार किया

और उनके साथ मैत्री स्थापित कर उन्हें अपने भाई के समान माना। भारतीय वाग्मय में ऐसे अनेक प्रसंग उपलब्ध हैं जिससे इस निष्कर्ष की पुष्टि मिलती है कि अनेक ऋषि—मुनि, साधक, सिद्ध और संत जिन्हें हम पूज्य मानते हैं और जिनके चित्र और मूर्तियां आज भी घरों में और मंदिरों में आदरपूर्वक स्थापित होते हैं आवश्यक नहीं कि वे ब्राह्मण या किसी उच्च जाति के ही हों, केवल विद्वत्ता सिद्धियों और गुणों के आधार पर वे समाज का सम्मान पाने के अधिकारी माने गये हैं। हमारे चिंतन में जाति—पांति के लिए कोई स्थान है ही नहीं। हम तो कहते हैं— *जाति पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।*

भारतीय चिंतन के दो ध्येय हैं— संपूर्ण विश्व का कल्याण और व्यक्तित्व का उदात्तीकरण। हमारे चिंतन का ध्येय बहुत सुंदर शब्दों में जयशंकर प्रसाद ने *कामायनी* में लिखा है— *‘औरों को हंसते देखो मन हंसो और सुख पाओ, अपने सुख को विस्तृत कर औरों का सुखी बनाओ।’*

हमारे शास्त्रों में अनेक मंत्र हैं, सूत्र हैं, श्लोक हैं जो भारतीय चिंतन को मूर्त रूप में दिग्दर्शित करते हैं। भारतीय वेदान्तिक दर्शन का अद्वैतवाद, जहां एक ओर जांत—पांत और छूआछूत की विचारधाराओं की उन जड़ों को काटता है जो संकीर्ण मस्तिष्कों की उपज है, वसुधैव कुटुम्बकम् (Universal Brotherhood) की अत्यन्त उदार दृष्टि देता है। *‘वसुधैव कुटुम्बकम्’* का उद्घोष भारत ने ही विश्व के सन्मुख किया। हमारी जीवन पद्धति कहती है— *सर्वे सुखिनः भवन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः*। हिंसा का कोई स्थान हमारे चिंतन में है ही नहीं। इसलिए महावीर ने उद्घोष किया — *अहिंसा परमो धर्मः* और वे महावीर से भगवान महावीर हो गए। हम द्वार पर आए व्यक्ति को, भले ही वह अपरिचित हो, अतिथि मानते हैं और हमारा अपरिचय ऐसे अतिथि को देव तुल्य सम्मान देने में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करता। *अतिथि देवो भवः*। हम भूखे रहकर भी अतिथि को भोजन कराने में विश्वास रखते हैं। हमारा चिंतन भूखे को रोटी देने तक ही सीमित नहीं है। हम कबूतर को दाना, चींटी को आटा, गाय को घास देने की भी व्यवस्था करते हैं और इस व्यवस्था को अपनी दिनचर्या में समाहित करते हैं। सड़क चलते प्यासे के लिए प्याऊ, भूखे या अंकिकन के लिए धर्मादा और निराश्रित के लिए धर्मशाला स्थापित करते हैं। हमारे चिंतन में नारी

आदरणीय ही नहीं पूजनीय है। *यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।* हमारी मान्यता है कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं। सनातन धर्म के अनुसार यज्ञ, पूजा, तीर्थयात्रा या कोई भी धार्मिक या सामाजिक कार्य करो उसका फल पति को तब तक नहीं मिलता जब तक कि उसकी पत्नी जिसे अर्धांगिनी कहा जाता है उसके साथ न हो। 'जैन्डर जस्टिस' (Gender justice) के इससे गहरे बीज कहां मिलेंगे? न केवल हम कहते हैं, विश्वास करते हैं और अपने आचरण में प्रयोग करते हैं। विश्व भर को संदेश देते हैं हमारी इस प्रार्थना के माध्यम से— *अस्तो मा सद्गमयः। तमसो मा ज्योर्तिगमयः। मृत्यो मा अमृतगमयः।* असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, मनुष्य की यात्रा अनवरत चलती रहे। ऐसी प्रार्थना और ऐसा सशक्त संदेश भारतीय चिंतन के अतिरिक्त विश्व के किसी अन्य चिंतन में मिलता ही नहीं है।

समूचे विश्व में निरन्तर ऐसी घटनाएं बढ़ रही हैं जो स्वस्थ समाज के लिए घातक हैं। इससे भी बड़ी विसंगति यह है कि समाज न तो इन घटनाओं का मुखर विरोध कर रहा है और न ही घटनाओं की रोकथाम के लिए गंभीर विचार—विमर्श। छुटपुट विरोध यदि कहीं दृष्टिगोचर होता भी है तो नारों या जुलूस की शकल में। सतही विचारों और सनसनीखेज तात्कालिक बयानों के बीच विवेक अनुपस्थित दिखलाई पड़ता है। हम सभी जानते हैं कि विवेकपूर्ण विचार—मंथन से गूढ़तम समस्याओं का भी निदान तलाशा जा सकता है, कम से कम एक सार्थक पहल तो की ही जा सकती है।

भारतीय होने का अर्थ है, भारत से जुड़े होना। भारतीय होना केवल पारिभाषिक नाम नहीं है, भारतीय होने से जुड़ा है भारत का वंशज होने की पहिचान, भारत मां की सन्तान होने का अभिमान, भारत भूमि की मिट्टी से इस शरीर की रचना हुई है इसका अहसास, भारतवर्ष की सीमाओं की रक्षा करने का उत्तरदायित्व और भारत का होने के नाते इसके सम्पन्न साहित्य, उदात्त दर्शन और गहन चिन्तन से लगाव। भारत कभी विश्व गुरु रहा है। आध्यात्मिक उन्नयन में न कोई हमारा जोड़ रहा है और न कोई हमारा सानी। यह भारतीयता ही है भारतीय चिंतन की देन। चिंतन विचारों को आकार देता है, उन्हें



निरूपित और प्रतिपादित करने की प्रक्रिया को चैतन्य करता है। चिंतन की प्रक्रिया बुद्धिजन्य है। स्वाभाविक है कि चिंतन का मुख्य श्रोत होता है साहित्य—प्राचीन और अर्वाचीन। अन्य घटक जो चिंतन को प्रभावित करते हैं वे हैं हमारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, हमारा परिवेश और हमारी परम्पराओं के पोषक तत्व।

भारतीय चिन्तन से मेल न खाने वाली शक्तियों ने वर्षों तक भारत पर शासन किया है उसी समय में हमारे चिन्तन में प्रदूषण प्रविष्ट हुआ है जिसके दुष्प्रभावों से हम मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।

हाल ही में दो अद्भुत शोध ग्रन्थ मुझे देखने में आए हैं। इन्हें देखकर न केवल ताज़गी मिली है, संचित ज्ञान में नवीनता का स्पर्श हुआ है बल्कि आत्मविश्वास भी समृद्ध हुआ हमारे अपने चिन्तन के प्रति। 'विश्व की काल यात्रा' (प्रकाशक, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली) डॉ० वासुदेव पोदार द्वारा रचित ग्रन्थ है, लगभग 25 वर्ष एक निष्ठ लगन और शोध का परिणाम। इसमें भारतीय ऋषि प्रज्ञा का विज्ञान—चिंतन लिपिबद्ध है। लेखक के शब्दों में 'विश्व की काल यात्रा' आनन्दघन महासत्ता की आनन्द यात्रा का इतिहास है। विज्ञान के क्षेत्र में पश्चिम जहां अभी शोध कर रहा है वहां हमारी ऋषि प्रज्ञा हजारों वर्ष पूर्व पहुंच चुकी थी। विज्ञान के लिए जो आज रहस्यमय और अचिन्त्य है, वही ऋषि प्रज्ञा के समक्ष अति सहज बन गया। शोध पद्धति में पश्चिम 6 हजार वर्ष से पीछे नहीं जा पाया। भारतीय चिन्तन अपनी खोज वहां तक ले गया जहां और जिस बिन्दु से सृष्टि की रचना प्रारंभ हुई थी। आदिग्रंथों में उल्लिखित ऋषि प्रज्ञा, ब्रह्मानन्द में घटित घटनाओं की काल गणना पल के अनेक खंड कर उनमें सुनिश्चित गणना का अधिकारिक उल्लेख करती है। डॉ० पोदार के निष्कर्ष सरल भाषा में कहा जाए तो यह है कि विज्ञान आज त्वरित गति के साथ ऋषि चिन्तन के अति निकट आ रहा है। इसका अर्थ यह है कि आधुनिक विज्ञान जहां आज पहुंचने का प्रयास कर रहा है वहां हम सैकड़ों हजारों वर्ष पूर्व पहुंच चुके थे। **Pride of India- A Glimpse into India's Scietific Heritage** (प्रकाशक संस्कृत भारतीय, नई दिल्ली) ने हमारी अनेक भ्रांतियां ध्वस्त की हैं। यह ग्रन्थ हमारा आत्मविश्वास जाग्रत करता है कि भारत न केवल दर्शन शास्त्र में

बल्कि भौतिक विज्ञानों में भी समृद्ध ज्ञानी रहा हैं। संस्कृत किसी धर्म विशेष की भाषा नहीं है; यह संपूर्ण विज्ञान सम्मत भाषा है, आदि भाषा है एवम् सभी भाषाओं की जननी है। सनातन धर्म—ग्रन्थ केवल कर्म कांड या दर्शन शास्त्र मात्र नहीं है; आधुनिक विज्ञान के अनेक विषयों पर जिसमें गणित भी सम्मिलित है, भारतवर्ष में तब खोज हो चुकी थी जब पाश्चात्य चिन्तन प्रारंभ भी नहीं हुआ था और इसका उल्लेख हमारे पौराणिक और वैदिक ग्रन्थों में मिलता है। यही खोज श्रुतियों और उपनिषदों में भी मिलती रही है।

भारतीय चिन्तन चिर प्रासंगिक है उपादेय है, सनातन है। वह पुरातन भी है, अत्याधुनिक भी। देश से विश्व तक, व्यक्ति से समाज तक और एकाकी से बहुआयामी तक, सभी शंकाओं और समस्याओं का समाधान भारतीय चिंतन में है। इसलिए भारतीय चिंतन समयातीत है, उसकी उपयोगिता स्थानातीत है।

.....